INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 2 | MARCH – 2025

कौशिक की ग़ज़लों में ग्रामीण और शहरी चेतना का अध्ययन

दीपक शर्मा
शोधार्थी हिन्दी
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. क्रांति मिश्रा
प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)

सारांश –

माधव कौशिक की ग़ज़लों में ग्रामीण (गंवई) और शहरी चेतना का प्रभावशाली समावेश मिलता है। वे अपनी शायरी में गाँव और शहर, दोनों के अनुभवों को संजोते हैं, जहाँ एक ओर गाँव की मिट्टी की महक, सीधापन और आत्मीयता है, वहीं दूसरी ओर शहर की भागदौड़, अकेलापन और बनावटीपन भी उभरकर आता है। उनकी ग़ज़लें इन दोनों संसारों के बीच पुल बनाती हैं और आधुनिकता व परंपरा के संघर्ष को गहराई से व्यक्त करती हैं। माधव कौशिक की ग़ज़लों में गाँव केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि एक अनुभव और स्मृति के रूप में आता है। वहाँ की सादगी, चौपाल, खेत–खलिहान, कच्चे घर, पीपल के पेड़, रिश्तों की आत्मीयता आदि को वे मार्मिक रूप से लिखते हैं।

मुख्य शब्द – माधव कौशिक, ग़ज़ल, ग्रामीण (गंवई) एवं शहरी चेतना।

प्रस्तावना –

माधव कौशिक की ग़ज़लों में गाँव की माटी से जुड़े लोग, विशेषकर किसान और श्रमिक, प्रमुखता से स्थान पाते हैं। वे उनकी मेहनत, त्याग और संघर्ष की गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं। आधुनिकता के प्रभाव में गाँवों का उजड़ना, बेरोजगारी, किसानों की बदहाली और गाँवों से शहरों की ओर पलायन जैसी स्थितियों को वे बेहद संवेदनशील तरीके से प्रस्तुत करते हैं। माधव कौशिक की ग़ज़लों में शहर केवल चमक–दमक और ऊँची इमारतों तक सीमित नहीं है, बल्कि वहाँ की भागदौड़, तनाव, रिश्तों की टूटन और अकेलेपन को भी वे प्रमुखता से दर्शाते हैं। वे दिखावे, व्यस्तता और आत्मकेंद्रित जीवनशैली पर तीखे कटाक्ष करते हैं। शहरी जीवन की आपाधापी में संवेदनाएँ और रिश्ते किस तरह दरक जाते हैं, यह उनकी ग़ज़लों में साफ झलकता है। वे पूँजीवादी शहरी व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर करते हैं, जहाँ एक ओर अमीरी की चकाचौंध है, तो दूसरी ओर फुटपाथों पर सोने वाले लोग भी हैं।

माधव कौशिक की ग़ज़लों में गाँव और शहर के बीच का विरोधाभास बार–बार सामने आता है। वे बताते हैं कि गाँव की सादगी और आत्मीयता कैसे धीरे–धीरे खत्म होती जा रही है और शहरी जीवन ने कैसे इंसान को व्यस्त और अकेला बना दिया है। उनकी शायरी गाँव से शहर आए उन लोगों की मानसिक स्थिति को भी व्यक्त करती है, जो न पूरी तरह गाँव में रह पाए और न ही शहर के बनावटीपन में ढल पाए।

विश्लेषण –

माधव कौशिक की ग़ज़लों में ग्रामीण और शहरी प्रतीकों का सुंदर समावेश होता है। भाषा सहज, प्रवाहमयी और संवेदनशील होती है, जिससे गाँव और शहर, दोनों की चेतना प्रभावी रूप से उभरकर आती है। समकालीन गज़ल विधा में माधव कौशिक एक नाम है, जो यथार्थ की जमीन पर संवेदना के स्वप्न बोता भर नहीं है, साकार एवं समर्थ सम्भावनाओं के मानवीय भावभूमि की सर्जना करता है। इस भावभूमि में शहर अथवा महानगर की रंगीनी नहीं है। उससे उपजी, उदासी है जो बार–बार गाँव जाने और उसे खोजने के लिए विवश करती है। यह विवशता और उदासी विकास की अंधी दौड़ में शामिल महानगरीय अपसंस्कृति की वजह से सघन होती है। जिम्मेदारियों से फुर्सत न मिल पाने की वजह से व्यक्ति अपनी जवानी इस शहर को दे देता है। ऐसा शहर जहाँ गाँव की कोई निशानी जीवित नहीं रहती। विकास की रवानगी मे गाँव का सौंदर्य गायब हो जाता है। गाँव–सौंदर्य की तलाश में निकला कवि बचपन की यथास्थिति को प्राप्त करना चाहता है। इस चाहत में उसकी ये मंशा शहर मे रहने वाले हर ग्रामीण नागरिक की मंशा बन जाती है –

जिसको बचपन में देखा वो पनघट पोखर ढूढूँगा
अगली बार गाँव में जाकर फिर अपना घर ढूढूँगा
शहरों की शैतानी आँतें लील गई हर चीज मगर
दिल की बच्चों जैसी जिद्द कि तितली के पर ढूढूँगा
कहीं ऐसा ना हो तुम भूल जाओ गाँव की गलियाँ
तुम्हें वो पेड़ पोखर, झील, झरने याद तो होंगे।
अँधेरी रात भी सुनकर जिन्हें आँसू बहाती है
अलावों पर बुजुर्गों के वे किस्से याद तो होंगे।[1]

शहरों में प्राप्त होने वाली तमाम सुविधाओं को त्याग कर भी 'मरने का इत्मीनान' गाँव में मिलना यह दर्शाता है कि सुख और सुकून की जिसे जरूरत है वह हर हाल में गाँव को बचाकर रखे। अपनी माटी और अपनी जमीन से जुडकर रहने का आनंद ही कुछ और है –

बाज़ारू माहौल घरों के अन्दर जब से आया है
दिल का हर प्यारा सा रिश्ता सचमुच काँटेदार हुआ।
तुमने खैर–खबर पूछी है, चलो बता ही देता हूँ
जीने की तो बात ही क्या है मरना भी दुश्वार हुआ।[2]

अभावों की दास्तां को झेलते गाँव के सम्बन्ध में कौशिक का स्पष्ट कहना है कि कंचन नगरी शहरों की अपेक्षा हमें 'ये छप्पर, झोपडे, खपरैल की छत ही काफी है' –

कब क्या हुआ रद्दोबदल हालात में
भूख उगती है अगर देहात में।
× × ×
छीन कर जो ले गया, सो ले गया
ज़िन्दगी मिलती नहीं ख़ैरात में।[3]

ग़ज़लकार माधव कौशिक जैसे ग्रामीण–हृदय व्यक्तित्व को, जिसने शहर को भी उससे कहीं अधिक जिया है, ये आज तक समझ नहीं आया कि गाँव से निकलकर शहरों में पहुँचे लोग खुश कैसे दिखाई देते हैं? यहाँ के ईंट भी दूसरे ईंट के जैसे नहीं होते। मनुष्य की सम्वेदनाएँ कैसे सामंजस्य बिठा पाती हैं, ये प्रश्न विचारणीय है। माधव कौशिक का लम्बा समय महानगरों में गुजरा है। यहाँ की रीति से लेकर रवायत तक का परिचय है उनका। महानगरों में रहने वालों में कवि के पूरे जीवनकाल मे जो भी मिला तन्हा मिला। मकानों

आदि की सघनता मे सामाजिकता के जो भाव होते हैं, शून्य दिखाई दिए। माधव कौशिक इस शून्यता को गहरे में महसूस करते हैं, अपने अनुभव को प्रमाणिकता के निकष पर कसकर कहते हैं –

वहाँ चौपाल भी वीरान थी, पनघट भी सूना था
सभी न गाँव को भी शहर की रफ्तार में देखा।
नहीं तो खून के छींटें तुम्हारे गाल पर होते
गनीमत है कि तुमने हादसा अखबार में देखा।
किसी ने भी नहीं बोली लगाई ऊँचे दामों की
हज़ारों बार हमने आदमी बाज़ार मे देखा।[4]

लोग 'स्व' के लिए जीते हैं 'पर' की भावना रखने वाले इन्सान को पागल और 'गंवई मूर्ख' समझते हैं। शहरों में तो साल के साल बीत जाते हैं लोग अपने ही साथ रहने वालों को लम्बे अंतराल तक नहीं देख पाते हैं। कितना सच कहते हैं माधव कौशिक यहाँ पर कि–रिश्तों के सौलाब भँवर में होते हैं/कुछ अनदेखे ख्वाब नजर में होते हैं/बरसों साथ रहे पर उनसे नहीं मिले/ऐसे भी इंसान नगर में होते हैं।'' नगर में ऐसे इंसानों की उपस्थिति मनुष्यता के सम्वेदनाहीन होने की निशानी प्रतीत होती है। यहाँ दिल और दिमाग का उपयोग करने वाले वे इंसान नहीं रह गये।[5]

शहर और गाँव की चेतना को माधव कौशिक ने इस प्रकार व्यक्त किया है:–

समय जब हाथ में लेकर खुली तलवार चलता है
समझ लो सख्त पहरे में मेरा इज़हार चलता है।
उसी मे लिप्त हैं कुछ शाकाहारी लोग शहरों के
शहर में मांस का एक और कारोबार चलता है।
हजारों बेलने पड़ते हैं पापड़ तब कहीं जाकर
बड़ी मुश्किल से हिन्दी का कोई अखबार चलता है।[6]

माधव कौशिक जैसे रचनाकार शहर का कम गाँव का अधिक रहे। परम्पराओं के प्रति सकारात्मक रहते हुए ग्रामीण संस्कृति के नवोन्मेष के प्रति प्रतिबद्धता जाहिर करते रहे। मनुष्य को स्वाभाविक प्रवृत्ति में प्रवेश कर समय–समाज और समकालीन परिस्थितियों पर लिखना एक कवि की सार्थक जिम्मेदारी का निर्वहन करना है। जिम्मेदारी के इस भाव से कौशिक कभी भागते नहीं दिखाई देते हैं। उनकी दृष्टि में शहर सम्प्रदायिकता और अन्य अराजक तत्वों के शिकार हो गये हैं –

हजारों सालों की भूख जिस दिन घरों से चलकर सड़क पे आई
गरीब–गुरबों की भीड़ ने तब न तख्त देखा ना ताज देखा।[7]

गाँव में अब भी अपने हैं। अपनो जैसे लोग हैं। ये प्रेम करते हैं तो सामाजिकता से। सामूहिकता इनका उद्देश्य तब भी था, जब हम इतने अधिक विकसित नहीं हुए थे, आज भी है जब विकास के सभी पायदान एक–एक कर चढ़ते जा रहे हैं। हमें गाँव की पगडंडियों का स्मरण रखना होगा जहाँ से बचपन सम्भल–सम्भल कर चलना सीखता है। बड़ा होता है। वहाँ के प्राकृतिक स्थिति का वरण करना होगा जहाँ के पशु–पक्षी से लेकर जीव–जंतु पेड़–पौधे तक में अपनत्व के भाव प्रवाहित होते रहते हैं।[8]

माधव कौशिक की ग़ज़लों मे गाँव और शहर का अनेक सहवाद का वर्णन हुआ है। रोटी की तलाश लोगों को गाँवों से शहर ले आई है। खेतिहर किसान शहरों में मजदूरी करने को विवश है। गाँव भूख की चपेट में है और शहर दंगे की। देशभक्त दो जून की रोटी को तरस रहे हैं और सत्ता के व्यापारी, धन–धान्य के स्वामी बनकर, दोनों हाथों से पैसा लुटा रहे हैं–

देशभक्त सब भूखे नंगे,
शहरों में मज़हब के दंगे।[9]

गाँव, शहर और महानगर अपने विशाल आकार के साथ शोभायमान, बड़े–बड़े शहर, संकुचित मानसिकता वालों के बसेरे हैं। शहरों की परिधि जितनी विशाल और क्षेत्रफल जितना अधिक है, उसके बाशिंदो का मन उतना ही छोटा और ओछा है। वास्तविकता यह है कि ऊँची अट्टालिकाओं, चौंधियाती रोशनियों तथा दमकते–खिलखिलाते चेहरों के बावजूद–

छोटेपन का, ओछेपन का
कुंठित महानगर।
चौराहे पर ठिठका–ठिठका
कभी न खुलकर रोया, सिसका,
पत्थर दिल पत्थर जैसा है
शापित महानगर।[10]

अज्ञानता और स्वार्थ के कारण गाँवों में वैमनस्य और टकराव खूब बढ़ा है। एक को बर्बाद करने के चक्कर में आदमी खुद बर्बाद होकर पलायन कर रहा है–

गाँव के गाँव हो गये खाली,
एक को दूसरे ने तोड़ दिया।[11]

गाँव–गंवई का चित्रण करते हुए ग़ज़लकार ने अपने गजल में चिंता व्यक्त की है:–

चौपालों के रंग सुनहरे कहाँ गये,
हँसी–ठिठोली करते बूढ़े कहाँ गये?
सन्नाटे की नागफनी है आँखों में,
आने वाले कल के सपने कहाँ गये?
सभी मुखौटे पहने घर से निकले हैं,
सोच रहा हूँ असली चेहरे कहाँ गये?
कल तक दिल मे धड़कन बनकर रहते थे,
प्यार–मुहब्बत के वे जज्बे कहाँ गये?[12]

नगरीकरण के खेतों का कब्जा कर लिया है जो अन्नदाता थे हमारे। लेकिन ज्ञानप्रकाश के ये खेत हमारे वे मानवीय मूल्य भी हैं जो गाँव में, खेतों में, प्रेम, अपनापन, भाईचारे के रूप में बस रहे थे आर जो किसी का बुरा नहीं चाहते थे। यह बात बहुत मार्मिकता से गज़लकार ने प्रस्तुत की है। सामाजिक पीड़ा को शेरों में ढालना गहरी संवेदनशीलता से ही आता है। जरा इन शेरों के ये बिंब भी देखिए–

कहाँ कहाँ से उठाता दलान के टुकड़े
फसाद कर गया मेरे मकान के टुकड़े
बड़ा–सा घाव है बस्ती के दिल में
जरा–सी बात पर झगड़ा हुआ था।[13]

'नई सदी का सन्नाटा' संग्रह की गज़लों में माधव अपने सामाजिक सरोकारों, अपने इर्द–गिर्द के परिवेश के यथार्थ से कटे नहीं हैं। उनका व्यंग्य, सलीके को बरकरार रखते हुए, इस संग्रह में माजूद है। जिन्दगी की विडम्बना को वे यूँ व्यक्त करते हैं:–

सुनेगा कौन अदालत में साफ सच्चाई
जरा भी झूठ की शोखी बयान में रख ले।.....
कल तलक जिनकी इबादत वक्त करता था बहुत
अब उन्हीं लोगों के बुत शहरों से हटवाने पड़े।.....
कोई मरे या जिये अब नही उसे परवाह,
खुदा भी आजकल अपना खयाल रखता है।.....
वह लूट कर ले गये अस्मत सपनों की,
दिखने में जो लोग लगे थे बडे भले।[14]

इस संग्रह में इक्कीसवीं सदी के यथार्थ पर एक पूरी सुन्दर गज़ल है, जो माधव के भविष्य के प्रति सरोकार को प्रकट करती है–

आतंक युद्ध. भूख ने इतने सितम किये,
किसको गले लगायेगी इक्कीसवीं सदी
बारूद सर पे लादकर बारूद ओढ़कर
बारूद ही बिछायेगी इक्कीसवीं सदी।
आते हुए लजाएगी इक्कीसवीं सदी
कैसे नज़र मिलाएगी इक्कीसवीं सदी।।[15]

असुरक्षा का भाव महज गाँव ही नहीं बड़े–बड़े महानगरों तक है। भले ही उसके कारण भिन्न हों, लेकिन सामाजिक असुरक्षा की बात अब हर कोई करने लगा है। कौशिक लिखते हैं– ''छोटा सा कमरा शहरों में/कहलाता है घर/दरवाजे की हर झीर्री से/झाँक रहा है डर।'' वास्तव में, यह असुरक्षा भूमंडलीकरण की ही देन है। यह असुरक्षा का भाव तब अधिक बढ़ता है, जब रोटी–रोटी के साथ सरोकार जुड़ते हैं। लोग गाँव छोडकर शहर की शरण में जा बसते हैं। कौशिक लिखते हैं– ''भूख ने पसार दिए/पाँव भी/डूब गया सूखे में/गाँव भी/पेट के लिए/सियार की तरह/दुम दबाके/लोग शहर भागे।'' जाहिर है कि भूख के कारण विस्थापन करना वर्ग समाज में उतना ही बड़ा है, जितना कि वह हर शहर में अपनी जड़े बना सकता है।[16]

इन गज़लों का शायर अपने घर को, गाँव को और शहर की जिन्दगी को याद करता है। उसके जीवन में घर और शहर का द्वंद्व है, लेकिन उसे शहर के जीने के सौ अंदाज पसन्द नहीं और गाँव में मरने का मौका ही काफी है– ''मुबारक हो तुम्हें जीने के सौ अंदाज शहरों में/हमें तो गाँव में मरने की बस राहत की काफी है।'' जंगल की जो मस्ती बेघर–बंजारों में है, वह शहर नहीं जानता। गाँव में झूमते पेड़ो के पत्तों की हवा है, लेकिन वहाँ जो गुरबत भी है और शायर कहता है– ''सभी को गाँव का पनघट दिखाई देता है/किसी को गाँव का पनघट दिखाई देता है/किसी को गाँव की गुरबत नजर नहीं आती।'' जिसको बचपन मे देखा वो पनघट पोखर ढूढूँगा/अगली बार गाँव में जाकर फिर अपना घर ढूढूँगा।'' कवि शहर के जीवन और संस्कृति से दुःखी है। शहर जहर उगल रहे हैं, सब बेलिवास लगते हैं, खौफ कायम है, लाशों का इतिहास है, जीवन अखबारी है और उसका सन्नाटा सतरंगी फुलझड़ियों से दबा हुआ है। कवि की पीड़ा है कि गाँव की पायल शहर की तहजीब में खो गई है–''उसे भी शहर की तहजीब ने दफना दिया'', माधव/हमारे गाँव के पनघट पे पायल ढूढूँगा क्यों।'' शहर की आधुनिक सभ्यता ने गाँव की आत्मा को लील दिया है और गाँव में भारतीय मन खंडित हो रहा है।[17]

'खूबसूरत है आज भी दुनियाँ' गज़ल संग्रह क परिपेक्ष्य में कवि का ग्रामीण और शहरी चित्रण इस प्रकार वर्णित है:–

ऑख में आँसू लिये मुझसे कहा भगवान ने
आदमी होकर कभी हाथों को फैलाते नहीं।
हर शहर में सैकड़ों तामीर होते ताज भी
आप गर कारीगरों के हाथ कटवाते नहीं।
क्या पता किस खौफ से खामोश रहते हैं सभी
इस शहर के लोग मर जाते हैं, चिल्लाते नहीं।[18]
इसी प्रसंग में कौशिक की गज़लों में गंवई और शहरी चेतना इस प्रकार जागृत हुई हैः–
अधूरे लोग थे पूरे शहर में
किसी के पाँव थे, कन्धा नहीं था।
तुम्हारे शहर में सब कुछ है लेकिन
हमारे गाँव में भी क्या नहीं था।[19]

गंवई हँसी ठिठोली, प्यार मुहब्बत और धड़कन तथा असली चेहरे ओझल हो चुके है। कवि कहता है :–

चौपालों के रंग सुनहरे कहाँ गये
हँसी ठिठौली करते बूढ़े कहाँ गये?
सन्नाटे की नागफनी है आँखों में
आने वाले कल के सपने कहाँ गये।
सभी मुखौटे पहने घर से निकले हैं
सोच रहा हूँ असली चेहरे कहाँ गये।[20]
गंवई रिस्ते सही सलामत थे, लेकिन कुछ दिन में नगर के रिस्ते टूट गएः–
गाँवों से तो सही–सलामत आये थे
कुछ ही दिन में लोग नगर मे टूट गये।[21]

'नयी उम्मीद की दुनियाँ' गज़ल संग्रह में कवि ने शहर को अपना कहने उम्मीद छोड दिया है। यथाः–

मैं किस उम्मीद पर इस शहर को अपना कहूँ 'माधव'
यहाँ बिकने लगी हैं अब सरे–बाजार उम्मीदें।[22]
इसी परिवेश में कवि का दृष्टिकोण निम्न पंक्तियों में प्रतिफलित होता हैः–
कुछ ऐसे भी लोग मिले हैं दुनिया में
जो दुनिया के नक्शा मिटा कर बैठे हैं।
हम भी उन लोगों में शामिल हैं 'माधव'
पानी पर जो नक्शा बना कर बैठे हैं।[23]
शहरी जीवन का एक और दृश्य देखेः–
सभी की आँख में आँसू तो हैं सपने नदारद हैं
तुम्हारे शहर के लोगों के क्यों चेहरे नदारद हैं।[24]

'नयी सदी का सन्नाटा' गज़ल संग्रह में माधव कौशिक ने शहर और गाँव–गंवई का चित्रण इस प्रकार किया हैः–

कौन देगा शहर में राहत मुझे
गाँव भी लिखता नहीं अब खत मुझे।[25]
महानगर, शहर और गाँव की तन्हाई को कवि अपने शेर में व्यक्त किया हैः–
भीड़ भरे हर महानगर में तन्हा था

जो भी मुझको मिला शहर में तन्हा था।
तन्हाई का आलम यह था रस्ते में
हर कोई इन्सान सफर में तन्हा था।
घर की सारी दीवारों पर चेहरे थे
लेकिन घर का मालिक घर में तन्हा था।[26]

इसी क्रम में कवि का कथ्य है कि इंसानियत गाँवों में बसती है। और शहर में मर जाती है। इसी का उल्लेख करते हुए कवि शहर और देहात का चित्रण किया हैः–

ये शहर भी है नयी तहजीब का
है उजाला दिन का आधी रात में।
धूप सूरज की नज़र से दूर थी
इसलिए बँटती रही खैरात में।
शहर में आती तो मर कर लौटती
बच गई इन्सानियत देहात में।[27]

'शब्द ढले अंगारों में' कवि का बहुचर्चित ग़ज़ल संग्रह है, कवि शहर के बाजार को नकार देता हैः–

बिकने को हर शख्स बिकाऊ है लेकिन
हर घर में बाजार हमें मंजूर नहीं।[28]
उक्त गज़ल संग्रह में शहरी जीवन का चित्र कवि ने इस प्रकार किया हैः–
इस शहर में जब अपना कोई भी नहीं 'माधव'
किस–किस को सजा देंगे, किस किस को पुकारेंगे।[29]
गाँव–गंवई का यथार्थ रूप उनकी ग़ज़लों में प्रतिबिम्बित होता हैः–
गाँव–गली से चलकर इक दिन सफल जहाँ तक फैल गये
दहशत के चमगादड़ काले देख कहाँ तक फैल गये।[30]

कौशिक की ग़ज़लों में गाँव जनपक्षधरता, गंवई, शहरी, नगरी एवं महानगरी चेतना का सांगोपांग चित्रण हुआ है। उनके ग़ज़ल संग्रहों में गाँव और गंवई जीवन को असीम महत्व प्रदान की गई है जबकि शहरी और महानगरी चेतना दुर्बल और नष्टप्राय परिवेश को धरण करती है। ग़ज़लकार के शेरों में गाँव की नवीनता, सौहार्द, माया, ममता, दया, करूणा की भावना, गम्भीरता और सजग है, जबकि नगरी जीवन में उदासीनता चित्रित है। यही ग़ज़ल का सृजन का आत्मसंघर्ष है। नगर और गाव के मासूमियत को बड़े साफ और सावधनीपूर्वक उजागर किया है, उनकी सारी ग़ज़लें, आम बोल–चाल की भाषा में लिखी गई है। कौशिक जी की ग़ज़लों में एक अलग विजन है। स्पष्टता है और अनोखी इच्छाओं का प्रबल ज्ञान है। निः संदेह वे ग्राम्य के सफल ग़ज़लकार हैं।

निष्कर्षः

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि माधव कौशिक की ग़ज़लों में गंवई और शहरी चेतना का अद्भुत संतुलन देखने को मिलता है। वे गाँव की आत्मीयता और संघर्ष को उतनी ही गहराई से व्यक्त करते हैं, जितनी तीव्रता से शहर के बनावटीपन और भौतिकता पर सवाल उठात हैं। उनकी शायरी गाँव और शहर, दोनों के अंतर्द्वंद्व और सामाजिक बदलाव को सजीव रूप में प्रस्तुत करती है। माधव कौशिक की ग़ज़लें विषयवस्तु, संवेदना और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध और विविधता से परिपूर्ण हैं। उनकी रचनाओं में प्रेम, समाज, राजनीति, जीवन–दर्शन, मानवीय भावनाएँ और यथार्थ के विभिन्न रंगों की झलक मिलती है। वे परंपरागत ग़ज़ल के सौंदर्य को बनाए रखते हुए, उसे समकालीन संदर्भों से जोड़ते हैं, जिससे उनकी ग़ज़लें पाठकों और श्रोताओं

के हृदय में गहरी छाप छोड़ती हैं। उनकी ग़ज़लों में सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जिससे वे केवल भावुकता तक सीमित न रहकर समसामयिक मुद्दों से भी जुड़ती हैं। प्रेम और मानवीय संवेदनाओं की कोमलता भी उनकी रचनाओं का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जो पाठकों को आत्मीयता का अनुभव कराती है। इसके अलावा, आत्मचिंतन और दार्शनिक दृष्टिकोण उनकी ग़ज़लों को गहराई प्रदान करता है, जिससे वे विचारोत्तेजक बन जाती हैं।

संदर्भ –

1 माधव कौशिक – नयी उम्मीद की दुनिया, पृष्ठ 110
2 माधव कौशिक – नयी उम्मीद की दुनिया, पृष्ठ 96
3 माधव कौशिक – खूबसूरत है आज भी दुनिया, पृष्ठ 49
4 माधव कौशिक – खूबसूरत है आज भी दुनिया, पृष्ठ 14
5 प्रो. मंजुला राणा – माधव कौशिक की काव्य संवेदना, पृष्ठ 56
6 माधव कौशिक – खूबसूरत है आज भी दुनिया, पृष्ठ 17
7 माधव कौशिक – शब्द ढले अंगारों में, पृष्ठ 102
8 डॉ. अशोक कुमार – माधव कौशिक संवेदना से शिल्प तक, पृष्ठ 58
9 डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल' – माधव कौशिक सृजन की समीक्षा, पृष्ठ 154
10 डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल' – माधव कौशिक सृजन की समीक्षा, पृष्ठ 154–155
11 डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल' – माधव कौशिक सृजन की समीक्षा, पृष्ठ 111
12 माधव कौशिक – नई सदी का सन्नाटा, पृष्ठ 46
13 हरेराम नेमा 'समीप' – समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार एक अध्ययन, पृष्ठ 297
14 डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल' – माधव कौशिक सृजन की समीक्षा, पृष्ठ 50
15 डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल' – माधव कौशिक सृजन की समीक्षा, पृष्ठ 50
16 डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल' – माधव कौशिक सृजन की समीक्षा, पृष्ठ 150
17 डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल' – माधव कौशिक सृजन की समीक्षा, पृष्ठ 128
18 माधव कौशिक – ख़ूबसूरत है आज भी दुनिया, पृष्ठ 112
19 माधव कौशिक – ख़ूबसूरत है आज भी दुनिया, पृष्ठ 72
20 माधव कौशिक – ख़ूबसूरत है आज भी दुनिया, पृष्ठ 63
21 माधव कौशिक – ख़ूबसूरत है आज भी दुनिया, पृष्ठ 27
22 माधव कौशिक – नयी उम्मीद की दुनिया, पृष्ठ 55
23 माधव कौशिक – नयी उम्मीद की दुनिया, पृष्ठ 54
24 माधव कौशिक – नयी उम्मीद की दुनिया, पृष्ठ 53
25 माधव कौशिक – नई सदी का सन्नाटा, पृष्ठ 11
26 माधव कौशिक – नई सदी का सन्नाटा, पृष्ठ 107
27 माधव कौशिक – नई सदी का सन्नाटा, पृष्ठ 104
28 माधव कौशिक – शब्द ढले अंगारों में, पृष्ठ 101
29 माधव कौशिक – शब्द ढले अंगारों में, पृष्ठ 83
30 माधव कौशिक – शब्द ढले अंगारों में, पृष्ठ 59